<u>प्रतिवेद्य</u>

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय
आपराधिक अपीलीय अधिकारिता

<u>आपराधिक अपील संख्या 1791/2022</u>
(विशेष अनुमति याचिका (आप) सं. 351/2021 से उत्पन्न)

मनोज कुमार तिवारी ...अपीलकर्ता (गण)

बनाम

मनीष सिसोदिया और अन्य ...प्रत्यर्थी (गण)

सह

<u>आपराधिक अपील संख्या 1790/2022</u>
(@ विशेष अनुमति याचिका (आप) सं. 658/2021)

<u>निर्णय</u>

<u>वी. रामसुब्रमण्यम, न्या.</u>

अनुमति प्रदान की जाती है।

2. अतिरिक्त मुख्य महानगर दंडाधिकारी-I, राउज एवेन्यू कोर्ट, नई दिल्ली द्वारा छह व्यक्तियों के खिलाफ, यहां इसमें, प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा दायर मानहानि की

आपराधिक शिकायत में जारी किए गए समन के आदेश को अभियुक्त सं. 1 और 5 के रूप में सूचीबद्ध व्यक्तियों द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष असफल रूप से चुनौती दी गई थी और इसलिए वे दोनों उपरोक्त आपराधिक अपील के साथ प्रस्तुत हुए हैं।

3. हमने अपीलकर्ताओं की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर. वेंकटरमणी और सुश्री पिंकी आनंद और प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से पेश हुए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ अभिषेक मनु सिंघवी के साथ-साथ विद्वान अधिवक्ता श्री शादान फरासत को सुना है।

4. 19.07.2019 को, प्रत्यर्थी सं. 1, यहां इसमें, ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (*इसके बाद इसे 'दं.प्र.सं.' के रूप में संदर्भित किया जाएगा)* की धारा 200 के तहत अतिरिक्त मुख्य महानगर दंडाधिकारी, राउज एवेन्यू कोर्ट, नई दिल्ली के समक्ष भारतीय दंड संहिता *(इसके बाद इसे 'भा.दं.सं.' के रूप में संदर्भित किया जाएगा)* की धारा 499 और 500 सहपठित धारा 34 और 35 के तहत अपराध करने का आरोप लगाते हुए छह व्यक्तियों के खिलाफ शिकायत दर्ज की। उनकी शिकायत में प्रत्यर्थी सं. 1 का मामला था *कि* वे फरवरी 2015 से दिल्ली के उपमुख्यमंत्री हैं; *कि* दिनांक 01.07.2019 को, श्री मनोज तिवारी, (*अभि-1 जो इन अपीलों में से एक में अपीलकर्ता हैं)* ने दिल्ली सरकार के स्कूलों में कक्षाओं के निर्माण के लिए ठेके देने के मामले में शिकायतकर्ता के 2000 करोड़ रुपये

के भ्रष्टाचार में शामिल होने के झूठे और अपमानजनक बयान देते हुए एक प्रेस वार्ता आयोजित की; *कि* उक्त शिकायत में अभियुक्त संख्या 2 से 4 के रूप में नामित व्यक्तियों ने प्रेस वार्ता के दौरान उक्त श्री मनोज तिवारी के साथ मंच साझा किया और उन्होंने भी वही मानहानि के बयान दिए; *कि* श्री विजेंद्र गुप्ता, जिन्हें शिकायत में अभियुक्त सं. 5 *(इनमें से एक अपील में अपीलकर्ता)* के रूप में पेश किया गया है, ने शिकायतकर्ता के खिलाफ अपमानजनक सामग्री ट्वीट की; और *कि* शिकायत में प्रत्यर्थी सं. 6 के रूप में नामित व्यक्ति ने भी अपने ट्वीट में मानहानिकारक बयान दिए। यहां इसमें प्रत्यर्थी सं. 1 *(शिकायतकर्ता)* के अनुसार सभी अभियुक्त व्यक्तियों ने उन्हें बदनाम करने के लिए सामान्य इरादे से और एक सुविचारित और योजनाबद्ध तरीके से काम किया, जिससे उन्होंने स्वयं को अभियोजन के लिए उत्तरदायी बनाया है।

5. दं.प्र.सं. की धारा 202(1) के तहत जांच में प्रत्यर्थी सं. 1 और दो स्वतंत्र गवाहों के बयान दर्ज करने के बाद और प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा पेश किए गए दस्तावेजों पर ध्यान देने के बाद, विद्वान अतिरिक्त मुख्य महानगर दंडाधिकारी ने 28.11.2019 को एक आदेश पारित किया, जिसमें सभी छह आरोपियों को समन जारी करने का निर्देश दिया गया, यह कहते हुए कि अभियुक्त सं. 1 से 4 के खिलाफ धारा 500 भा.दं.सं. सहपठित 34 भा.दं.सं. के तहत और अभियुक्त सं. 5 और 6 के खिलाफ धारा 500 भा.दं.सं. के तहत आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार मौजूद हैं।

6. यहां इसमें, अपीलकर्ताओं (*जिन्हें क्रमशः अभियुक्त सं. 1 और 5 के रूप में उद्धृत किया गया था)* द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 482 के तहत याचिकाओं के माध्यम से समन जारी करने के आदेश को दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई। उच्च न्यायालय ने याचिकाओं को खारिज कर दिया, जिससे अपीलकर्ताओं को उपरोक्त अपीलों के साथ प्रस्तुत होने के लिए मजबूर होना पड़ा।

7. हालांकि संहिता की धारा 482 के तहत अपीलकर्ताओं द्वारा दायर याचिकाओं को दिल्ली उच्च न्यायालय ने एक समान आदेश द्वारा खारिज कर दिया था, लेकिन दोनों के मामले बिल्कुल समान नहीं हैं। इन अपीलों में से एक में अपीलकर्ता श्री मनोज कुमार तिवारी (अभि. 1), अभियुक्त संख्या 2 से 4 के साथ धारा 500 भा.दं.सं. सहपठित धारा 34 भा.दं.सं. के तहत दंडनीय अपराध करने के अभियुक्त हैं। लेकिन श्री विजेंद्र गुप्ता (अभि. 5) पर केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 500 के तहत दंडनीय अपराध करने का आरोप है। दिनांक 28.11.2019 के समन आदेश के अनुच्छेद 14 में, विद्वान अतिरिक्त मुख्य महानगर दंडाधिकारी ने निम्नलिखित राय दर्ज की है :-

> इसके अलावा प्रत्यर्थियों द्वारा बयानों को साझा करने और एक साथ संयुक्त प्रेस वार्ता आयोजित करने के बारे में प्रोत्साहन भी प्रत्यर्थी संख्या 1, 2, 3 और 4 के समान इरादे के अनुमान को मजबूत करता है। जहां तक प्रत्यर्थी सं. 5 और 6 द्वारा किए गए ट्वीट्स का संबंध है, जो

> प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 द्वारा आयोजित प्रेस वार्ता के कुछ घंटों के बाद किए गए हैं, इसलिए, प्रत्यर्थी सं. 5 और 6 के कृत्य को अन्य प्रत्यर्थियों के साथ समान इरादे से नहीं कहा जा सकता है, बल्कि वे मानहानि के व्यक्तिगत कार्य हैं।

8. श्री मनोज कुमार तिवारी के मामले और श्री विजेंद्र गुप्ता के मामले के बीच उपरोक्त अंतर को ध्यान में रखते हुए, आइए अब हम उन आधारों पर विचार करने के लिए आगे बढ़ें जिन पर इन अपीलकर्ताओं द्वारा समन आदेश को चुनौती दी गई है।

9. एकमात्र आधार जिस पर अभियुक्त सं. 1 समन करने के आदेश को चुनौती देता है, वह यह है कि न्यायालय को धारा 199 की उपधारा (4) में निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना, धारा 200 दं.प्र.सं. के तहत एक निजी शिकायत पर विचार नहीं करना चाहिए था, विशेष रूप से संहिता की धारा 199(2) द्वारा आच्छादित व्यक्ति से।

10. अभियुक्त सं. 5 जो अन्य अपील में अपीलकर्ता है, तीन आधारों पर समन करने के आदेश को चुनौती देता है, अर्थात्, ***(i)*** कि प्रत्यर्थी सं. 1 को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 199(4) में निर्धारित विशेष प्रक्रिया का पालन करना चाहिए था, क्योंकि वह एक केंद्र शासित प्रदेश के मंत्री हैं; ***(ii)*** यह कि उनके हवाले से किए गए ट्वीट्स की प्रतिलिपि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 65ख के संदर्भ में एक वैध

प्रमाण पत्र के साथ नहीं थी; और *(iii)* कि किसी भी मामले में उनके द्वारा किए गए ट्वीट *अपने आप में* भा.दं.सं. की धारा 499 के संदर्भ में धारा 500 भा.दं.सं. के तहत दंडनीय मानहानि का मामला नहीं बनाते हैं।

11. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा मुख्य रूप से ***पी.सी. जोशी और अन्य*** बनाम ***उत्तर प्रदेश राज्य; सुब्रमण्यम स्वामी*** बनाम ***भारतीय संघ;*** और ***के.के. मिश्रा*** बनाम ***मध्य प्रदेश राज्य और अन्य*** में इस न्यायालय के निर्णयों का अवलंब लिया गया है। अपीलकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क यह है कि यदि यह धारा 199(2) के तहत शुरू किए गए दुर्भावनापूर्ण अभियोजन का मामला है, संहिता की धारा 237 में कुछ परिणाम निर्धारित किए गए हैं और यह कि धारा 199(2) में निर्धारित विशेष प्रक्रिया की उपेक्षा करने का प्रत्यर्थी सं. 1 का प्रयास संहिता की धारा 237 के परिणामों से बचने की दृष्टि से है।

12. अतिरिक्त मुख्य महानगर दंडाधिकारी द्वारा पारित समन आदेश और उसी को दी गई चुनौती को खारिज करने के उच्च न्यायालय के आदेश का बचाव करते हुए, डॉ. ए.एम. सिंघवी द्वारा यह तर्क दिया गया है कि संहिता की धारा 199(2) द्वारा जो निर्धारित किया गया है वह एक विशेष प्रक्रिया है, जो धारा 199(6) के तहत निर्धारित सामान्य प्रक्रिया को अपवर्जित नहीं करती है और यह कि एक व्यक्ति के रूप में एक लोक सेवक का मानहानि के लिए किसी

व्यक्ति पर मुकदमा चलाने का अधिकार धारा 199(6) द्वारा सुनिश्चित किया गया है, जिस पर धारा 199 की उपधारा (2) के प्रावधान लागू नहीं होते हैं। हमारा ध्यान भारत के विधि आयोग की 41वीं की रिपोर्ट की ओर भी आकृष्ट किया गया है, जिसके कारण दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 198ख में व्यापक परिवर्तन हुए।

13. हमने प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है। संहिता की धारा 199 में निर्धारित दो अलग-अलग प्रक्रियाओं के दायरे और क्षेत्र को समझने के लिए, इन प्रावधानों के विधायी इतिहास पर एक नज़र डालना आवश्यक हो सकता है। दुर्भाग्य से, इस इतिहास के दो संस्करण उभरते हैं, एक वर्ष 1943, 1955 और 1964 में 1898 की संहिता में किए गए संशोधनों और 1973 की संहिता से और दूसरा जो विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट से उभरता है। हम इतिहास के दोनों संस्करणों पर ध्यान देंगे।

<u>धारा 199 (और, सटीक होने के लिए, 198) का विधायी इतिहास महत्वपूर्ण पड़ाव -1 (वर्ष 1898)</u>

14. दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 198, जैसा कि यह मूल रूप से दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 में थी, निम्नानुसार है :-

> 198. कोई भी न्यायालय भारतीय दंड संहिता के अध्याय XIX या अध्याय XXI के तहत या उसी संहिता की धारा

493 से 496 (दोनों समावेशी) के तहत आने वाले अपराध का संज्ञान नहीं लेगा, सिवाय ऐसे अपराध से पीड़ित किसी व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत पर।

<u>महत्वपूर्ण पड़ाव-2 (वर्ष 1943)</u>

15. दण्ड प्रक्रिया (द्वितीय संशोधन) अधिनियम, 1943 द्वारा धारा 198 में निम्नलिखित प्रभाव से एक *परंतुक* जोड़ा गया था :-

"बशर्ते कि, जहां पीड़ित व्यक्ति एक महिला है, जिसे देश के रीति-रिवाजों और शिष्टाचार के अनुसार, सार्वजनिक रूप से पेश होने के लिए मजबूर नहीं किया जाना चाहिए, या जहां ऐसा व्यक्ति अठारह वर्ष से कम आयु का है या मंदबुद्धि या विक्षिप्त है, या बीमारी या दुर्बलता से शिकायत करने में असमर्थ है, कोई अन्य व्यक्ति, न्यायालय की अनुमति से, उसकी ओर से शिकायत कर सकता है।

<u>महत्वपूर्ण पड़ाव- 3 (विधि आयोग का गठन)</u>

16. भारत को स्वतंत्रता मिलने के बाद, केंद्रीय अधिनियमों की जांच के लिए एक विधि आयोग की नियुक्ति के लिए सुझाव दिए गए थे। प्रारंभ में, 2 दिसंबर, 1947 को संविधान सभा में एक प्रस्ताव पेश किया गया था जिसमें एक वैधानिक कानून संशोधन समिति की स्थापना की सिफारिश की गई थी। तथापि, तत्कालीन विधि मंत्री डा. अम्बेडकर द्वारा कानूनों के संशोधन और संहिताबद्ध करने के लिए एक स्थायी विधि आयोग गठित करने के आश्वासन पर

प्रसताव वापस ले लिया गया था। आखिरकार, लोकसभा ने 19 नवंबर, 1954 को एक विधि आयोग का गठन करने का संकल्प लिया, जो कानूनों के संशोधन और आधुनिकीकरण की सिफारिश करेगा, दोनों मूल और प्रक्रियात्मक और विशेष रूप से, नागरिक और आपराधिक प्रक्रिया संहिताओं की। इसके अनुसरण में, अगस्त/सितंबर 1955 में विधि आयोग का गठन किया गया था, जिसके अध्यक्ष भारत के अटॉर्नी जनरल एम.सी. सीतलवाड़ थे।

<u>महत्वपूर्ण पड़ाव- 4 (वर्ष 1955)</u>

17. इस बीच, संसद ने 'दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1955, (1955 का अधिनियम XXVI)' अधिनियमित किया, जिसे 10 अगस्त, 1955 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई और 12 अगस्त, 1955 को भारत के राजपत्र में प्रकाशित किया गया था। 1955 के इस संशोधन अधिनियम XXVI की धारा 25 द्वारा, धारा 198-ख में एक नया प्रावधान जोड़ा गया था, जिसमें सार्वजनिक कार्यों के निर्वहन में उनके आचरण के संबंध में लोक सेवकों के खिलाफ मानहानि के लिए मुकदमा चलाने के लिए एक विशेष प्रक्रिया का प्रावधान किया गया था। यह धारा 198-ख इस प्रकार है :-

> "198 ख। (1) इस संहिता में निहित किसी बात के होते हुए भी, जब भारतीय दंड संहिता (1860 का अधिनियम XLV) के अध्याय XXI के अंतर्गत आने वाला कोई अपराध (बोले गए शब्दों द्वारा मानहानि के अपराध के अलावा)

राष्ट्रपति, या उपराष्ट्रपति, या किसी राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख, या किसी मंत्री, या संघ या राज्य के मामलों के संबंध में नियोजित किसी अन्य लोक सेवक के खिलाफ, उसके सार्वजनिक कृत्यों के निर्वहन में उसके आचरण के संबंध में, कथित रूप से किया गया हो, लोक अभियोजक द्वारा लिखित में की गई शिकायत पर, अभियुक्त के मुकदमे के लिए प्रतिबद्ध हुए बिना, सत्र न्यायालय ऐसे अपराध का संज्ञान ले सकता है।

(2) ऐसी प्रत्येक शिकायत में उन तथ्यों को प्रस्तुत किया जाएगा जो कथित अपराध, ऐसे अपराध की प्रकृति और ऐसे अन्य विवरण का गठन करते हैं, जो उसके द्वारा किए गए कथित अपराध के अभियुक्त को नोटिस देने के लिए यथोचित रूप से पर्याप्त हैं।

(3) उपधारा (1) के अधीन लोक अभियोजक द्वारा पूर्व अनुमोदन के अलावा कोई शिकायत नहीं की जाएगी, -

(क) राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख, उसके द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत सरकार के किसी सचिव के मामले में;

(ख) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के किसी मंत्री के मामले में, मंत्रिपरिषद के सचिव, यदि कोई हो, या संबंधित सरकार द्वारा इस संबंध में प्राधिकृत सरकार के किसी सचिव के मामले में;

(ग) संघ या किसी राज्य के कार्यों के संबंध में, संबंधित सरकार के, नियोजित किसी अन्य लोक सेवक के मामले में।

(4) सत्र का कोई न्यायालय उपधारा (1) के तहत किसी अपराध का संज्ञान नहीं लेगा, जब तक कि शिकायत अपराध की तारीख, जिस पर कथित तौर पर अपराध किया गया है, से छह महीने के भीतर नहीं की जाती है।

(5) जब सत्र न्यायालय उपधारा (1) के अधीन किसी अपराध का संज्ञान लेता है, तो इस संहिता में निहित किसी बात के होते हुए भी, सत्र न्यायालय जूरी के बिना मामले का विचारण करेगा और मामले का विचारण करते समय, पुलिस रिपोर्ट के अतिरिक्त अन्यथा स्थापित वारंट मामलों के मजिस्ट्रेटों द्वारा विचारण के लिए निर्धारित प्रक्रिया का पालन करेगा और उस व्यक्ति की जिसके विरुद्ध अपराध किया गया है, जब तक सत्र न्यायालय, अन्यथा दर्ज किए जाने वाले कारणों से निर्देश देता है, अभियोजन पक्ष के लिए एक गवाह के रूप में परीक्षा की जाएगी।

(6) यदि इस धारा के अधीन स्थापित किसी मामले में, सत्र न्यायालय, जिसके द्वारा मामले की सुनवाई की जाती है, सभी या किसी भी अभियुक्त को रिहा या बरी कर देता है, और यह राय रखता है कि उनके या उनमें से किसी के खिलाफ आरोप झूठे और तुच्छ या अफसोसजनक थे, तो सत्र न्यायालय, रिहा करने या बरी करने के अपने आदेश द्वारा, जिस व्यक्ति के खिलाफ अपराध कथित तौर पर किया गया है (राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति या राज्यपाल या किसी राज्य के राजप्रमुख के अलावा) को कारण बताने का निर्देश

दे सकता है कि वह ऐसे आरोपियों या ऐसे प्रत्येक अभियुक्त को, जब एक से अधिक अभियुक्त हों, मुआवजा क्यों न दे।

(7) सत्र न्यायालय ऐसे किसी कारण को अभिलिखित करेगा और उस पर विचार करेगा जो इस प्रकार निर्देशित व्यक्ति द्वारा दिखाया जा सकता है और यदि वह संतुष्ट है कि आरोप गलत और तुच्छ या अफसोसजनक था, तो यह, दर्ज किए जाने वाले कारणों से, यह निर्देश दे सकता है कि ऐसी राशि, जो एक हजार रुपये से अधिक नहीं हो, जैसा कि यह निर्धारित करे, ऐसे व्यक्ति द्वारा अभियुक्त या उनमें से प्रत्येक या किसी को दी जाए।

(8) उपधारा (7) के तहत दी गईं सभी क्षतिपूर्ति की वसूली की जा सकती है जैसे कि ये जुर्माना थी।

(9) कोई भी व्यक्ति जिसे उपधारा (7) के अधीन क्षतिपूर्ति का भुगतान करने का निदेश दिया गया है, ऐसे आदेश के कारण इस धारा के अधीन की गई शिकायत के संबंध में किसी सिविल या दांडिक दायित्व से मुक्त होगा :-

बशर्ते कि इस धारा के अधीन अभियुक्त व्यक्ति को अदा की गई किसी भी राशि को उसी मामले से संबंधित किसी भी बाद के सिविल मुकदमे में ऐसे व्यक्ति को मुआवजा देते समय ध्यान में रखा जाएगा।

(10) वह व्यक्ति जिसे उपधारा (7) के तहत क्षतिपूर्ति का भुगतान करने का आदेश दिया गया है, आदेश से अपील कर सकता है, जहां तक आदेश क्षतिपूर्ति के भुगतान से

संबंधित है, मानो कि उसे सत्र न्यायालय द्वारा आयोजित मुकदमे में दोषी ठहराया गया था।

(11) जब किसी अभियुक्त व्यक्ति को मुआवजे के भुगतान का आदेश किसी ऐसे मामले में किया जाता है जो उपधारा (10) के अधीन अपील के अधीन है, तो अपील की प्रस्तुति के लिए अनुमत अवधि समाप्त होने से पहले, या, यदि अपील प्रस्तुत की जाती है, तो अपील पर निर्णय होने से पहले उसे क्षतिपूर्ति का भुगतान नहीं किया जाएगा ।

(12) इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "सत्र न्यायालय" पद में कलकत्ता और मद्रास के उच्च न्यायालय अपने मूल आपराधिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए शामिल हैं।

(13) इस धारा के उपबन्ध धारा 198 के उपबन्धों के अतिरिक्त होंगे और उनका अल्पीकरण नहीं करेंगे।

<u>महत्वपूर्ण पड़ाव- 5 ("न्यायिक प्रशासन में सुधार" पर विधि आयोग की 14वीं रिपोर्ट और 1964 का संशोधन)</u>

18. 1955 के संशोधन अधिनियम XXVI (जिसके द्वारा धारा 198-ख को सम्मिलित किया गया था) का अधिनियमन अगस्त/सितंबर 1955 में विधि आयोग के गठन के साथ हुआ। विधि आयोग ने "*न्यायिक प्रशासन में सुधार*" पर अपनी 14वीं रिपोर्ट सितंबर, 1958 में प्रस्तुत की। यह रिपोर्ट केवल न्यायिक प्रशासन को त्वरित और कम खर्चीला बनाने के लिए आवश्यक परिवर्तनों को व्यापक रूपरेखा में इंगित करने तक ही सीमित थी, जैसा कि विधि आयोग के अध्यक्ष द्वारा 26 सितंबर, 1958 को तत्कालीन विधि मंत्री को संबोधित पत्र से

देखा जा सकता है। दंड और सिविल प्रक्रिया संहिताओं की विस्तृत जांच स्थगित कर दी गई थी, क्योंकि उनमें काफी समय लगने की संभावना थी।

19. सितम्बर, 1958 में विधि आयोग द्वारा न्यायिक प्रशासन में सुधार पर अपनी 14वीं रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद, सरकार ने आयोग से दंड प्रक्रिया संहिता की जांच करने को कहा। जब विधि आयोग यह कार्य कर रहा था, तब संसद ने 'भ्रष्टाचार रोधी विधि (संशोधन) अधिनियम, 1964 (1964 का अधिनियम 40)' अधिनियमित किया। इस अधिनियम के द्वारा, चार अलग-अलग अधिनियम, अर्थात्, भारतीय दंड संहिता, 1860, दंड प्रक्रिया संहिता, 1898, दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 में संशोधन किया गया।

20. ***1964 के इस अधिनियम 40 द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 198-ख में तीन महत्वपूर्ण बदलाव किए गए थे।*** वो थे :-

(क) धारा 198-ख की उपधारा (1) में कोष्ठक और शब्द "(*बोले गए शब्दों से मानहानि के अपराध के अलावा*") को हटाने का निर्देश दिया गया था;

(ख) उपधारा (5) के पश्चात् एक नई उपधारा (5क) को निम्नानुसार सम्मिलित करने का निदेश दिया गया :-

(5क) इस धारा के तहत प्रत्येक विचारण कैमरे के सामने आयोजित किया जाएगा यदि कोई पक्ष ऐसा चाहता है या यदि सत्र न्यायालय ऐसा करना उचित समझता है।

(ग) उपधारा (13) के पश्चात, एक नई उपधारा (14) को निम्नानुसार सम्मिलित करने का निदेश दिया गया था:-

(14) जहां किसी अपराध के विचारण के लिए इस धारा के तहत एक मामला स्थापित किया गया है, उपधारा (13) में कुछ भी ऐसा नहीं माना जाएगा कि ऐसे अपराध से पीड़ित व्यक्ति द्वारा भी शिकायत करने की आवश्यकता है।

<u>1898 की संहिता में संशोधन द्वारा परिलक्षित इतिहास का संस्करण</u>

21. इतिहास के जिस संस्करण का पता 1898 की संहिता में वर्ष 1943, 1955 और 1964 में किए गए संशोधनों से लगाया जा सकता है, उसका निम्नलिखित प्रकार से सारांश किया जा सकता है :-

(i) 1898 की संहिता ने धारा 198 के तहत, केवल पीड़ित व्यक्ति को शिकायत दर्ज करने में सक्षम बनाया।

(ii) वर्ष 1943 के संशोधन ने उन महिलाओं जो सार्वजनिक रूप से उपस्थित नहीं हो सकती थीं, नाबालिग, वक्षिप्त, बीमार और अशक्त व्यक्ति आदि, के मामले में उन्हें किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से शिकायत दर्ज करने में सक्षम बनाकर एक अपवाद बनाया।

(iii) वर्ष 1955 के संशोधन में भारतीय दंड संहिता के अध्याय XXI के तहत राष्ट्रपति, या उपराष्ट्रपति, या किसी राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख, या मंत्री, या संघ या, उसके सार्वजनिक कार्यों के निर्वहन में उसके आचरण के संबंध में, राज्य के मामलों के संबंध में नियोजित किसी अन्य लोक सेवक के खिलाफ किए गए अपराधों के मामले में पालन की जाने वाली एक विस्तृत विशेष प्रक्रिया निर्धारित की गई थी। ***लेकिन यह प्रक्रिया बोले गए शब्दों द्वारा मानहानि के अपराध पर लागू नहीं थी जैसा कि "भारतीय दंड संहिता के अध्याय XXI के तहत आने वाला कोई भी अपराध (1860 का अधिनियम XLV) (बोले गए शब्दों द्वारा मानहानि के अपराध के अलावा) शब्दों से देखा जा सकता है।***

(iv) लेकिन धारा 198-ख(1) में बोले गए शब्दों द्वारा मानहानि के अपराध के अलावा शब्दों को 1964 के संशोधन द्वारा हटा दिया गया था। यह इस महत्वपूर्ण पड़ाव से था कि कानून 1973 की संहिता की धारा 199 में स्थानांतरित हो गया, जिसे हम बाद में देखेंगे।

<u>महत्वपूर्ण पड़ाव- 6 (विधि आयोग की 37वीं रिपोर्ट ने कार्य को अधूरा छोड़ दिया)</u>

22. वर्ष 1964 के उपरोक्त संशोधन के बाद, विधि आयोग ने दिसंबर, 1967 में दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 पर अपनी 37वीं रिपोर्ट प्रस्तुत की, लेकिन इसमें

केवल धारा 1 से 176 को शामिल किया गया था। इस 37वीं रिपोर्ट के अनुच्छेद 525 में संकेत दिया गया है कि धारा 176 के बाद की संहिता की धाराओं पर बाद की रिपोर्टों में विचार किए जाने का प्रस्ताव है।

<u>महत्वपूर्ण पड़ाव- 7 (विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट)</u>

23. इसलिए, मार्च, 1968 में गठित विधि आयोग द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता के शेष प्रावधानों का संशोधन किया गया था। इस आयोग ने सितंबर, 1969 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी, जो कि 41वीं रिपोर्ट है। दिलचस्प बात यह है कि इस 41वीं रिपोर्ट के परिचयात्मक अध्याय में दर्ज किया गया था कि हालांकि संहिता के पहले 14 अध्यायों का पिछली रिपोर्ट (37वीं रिपोर्ट) में व्यापक रूप से विश्लेषण किया गया है, विधि आयोग को उन सिफारिशों पर भी पुनर्विचार करने के लिए बाध्य होना पड़ा। विधि आयोग के अनुसार, इसका कारण यह था कि दंड प्रक्रिया संहिता जैसे बारीक एकीकृत और व्यापक कानून को टुकड़ों में संशोधित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि संहिता के एक भाग में सुझाए गए संशोधनों से स्वाभाविक रूप से संहिता के अन्य भागों के प्रावधानों को अधिक या कम हद तक प्रभावित करने की संभावना थी। इसलिए, 41वीं रिपोर्ट एक बहुत ही व्यापक रिपोर्ट बन गई।

24. जैसा कि हमने ऊपर अनुच्छेद 14 में देखा है, 1898 की संहिता में धारा 198 में एक प्रावधान था, जिसमें अनिवार्य किया गया था कि *(i)* अनुबंध का उल्लंघन; *(ii)* मानहानि; और *(iii)* विवाह, से संबंधित अपराधों का संज्ञान पीड़ित व्यक्ति द्वारा की

गई शिकायत के अलावा किसी भी न्यायालय द्वारा नहीं लिया जा सकता है। विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट ने मान्यता प्रदान की (जैसा कि *अनुच्छेद 15.131 से* देखा गया है) कि संहिता की धारा 198 अपराधों के तीन पूरी तरह से असंबद्ध समूहों के संज्ञान के मुद्दे से संबंधित है, अर्थात्, ***(i)*** असहाय व्यक्तियों की मांगों को पूरा करने या आपूर्ति करने के लिए अनुबंध के उल्लंघन से संबंधित अपराध; ***(ii)*** विवाह से संबंधित अपराध; और ***(iii)*** मानहानि से संबंधित अपराध। यह पाते हुए कि अपराधों के इन समूहों में कोई समानता नहीं है और उन सभी को एक साथ समूह में रखना दोषपूर्ण था, 41वीं रिपोर्ट ने धारा 198 में भारतीय दंड संहिता के अध्याय XIX के संदर्भ को हटाने की सिफारिश की।

25. तब विधि आयोग ने 1955 के संशोधन अधिनियम XXVI के तहत धारा 198-ख को शामिल करने पर ध्यान दिया और रिपोर्ट के अनुच्छेद 15.138 में धारा 198-ख के पीछे के तर्क को निम्नानुसार दर्ज किया गया है :-

> 15.138. धारा 198ख, जिसे 1955 के संशोधन अधिनियम द्वारा पेश किया गया था, मानहानि के अपराध के लिए अभियोजन से संबंधित है, जहां सार्वजनिक कार्यों के निर्वहन में उनके आचरण के संबंध में कुछ उच्च गणमान्य व्यक्तियों और लोक सेवकों के खिलाफ ऐसा अपराध किया जाता है। यह धारा ऐसे मामलों के लिए एक विशेष प्रक्रिया निर्धारित करती है। सत्र न्यायालय को लोक अभियोजक द्वारा लिखित में की गई शिकायत पर अभियुक्त को मुकदमे के लिए प्रतिबद्ध किए बिना ऐसे अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार है। पीड़ित व्यक्ति के लिए इस धारा के तहत शिकायत पर हस्ताक्षर करना आवश्यक नहीं है, लेकिन

शिकायत एक निर्दिष्ट प्राधिकारी की पूर्व मंजूरी के साथ की जानी चाहिए। विशिष्ट विशेषताएं भी हैं जिन पर नीचे चर्चा की जाएगी।

26. विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट के अनुसार, धारा 198ख मानहानि के अपराध हेतु अभियोजन के लिए एक विशेष प्रक्रिया प्रदान करने के लिए शामिल की गई थी जहां सार्वजनिक कार्यों के निर्वहन में उनके आचरण के संबंध में कुछ उच्च गणमान्य व्यक्तियों और लोक सेवकों के खिलाफ ऐसा अपराध किया जाता है। प्रक्रिया की विशेषताएं थीं, ***(i)*** कि अपराध को संज्ञेय बनाया गया था; ***(ii)*** कि शिकायत लोक अभियोजक द्वारा की जा सकती है और पीड़ित व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित होने की भी आवश्यकता नहीं है; और ***(iii)*** कि संज्ञान लेने की पूर्व शर्त यह है कि इसे एक निर्दिष्ट प्राधिकरण द्वारा मंजूरी दी गई थी।

27. यह देखना दिलचस्प है कि विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट इस बात पर ध्यान देने में विफल रही है कि 1955 के संशोधन अधिनियम द्वारा शामिल की गई धारा 198ख को कैसे लिखा गया था और 1964 में इसे कैसे बदल दिया गया था। ***1955 के संशोधन अधिनियम ने धारा 198ख को बोले गए शब्दों द्वारा मानहानि के अलावा अन्य अपराधों पर लागू किया। इस अपवाद को केवल 1964 के संशोधन द्वारा हटा दिया गया।*** विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट में 1964 के संशोधन का कोई उल्लेख नहीं है।

28. 1964 के संशोधन के संदर्भ के बिना, विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट अनुच्छेद 15.139 से 15.142 में 1955 के संशोधन से पहले की लड़ाई से शुरू होने वाले इतिहास का एक अलग संस्करण दर्ज करती है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मानहानि के अपराध को संज्ञेय बनाए जाने का भारी विरोध किया गया था। विरोध इंडियन फेडरेशन ऑफ वर्किंग जर्नलिस्ट्स की ओर से आया था। प्रेस आयोग ने बताया कि मानहानि के अपराध को संज्ञेय बनाने के परिणाम बहुत खतरनाक हैं, क्योंकि यह पुलिस को ***(i)*** वारंट के बिना गिरफ्तार करने; ***(ii)*** 1898 की संहिता के अध्याय XIII (वर्तमान में 1973 की संहिता के अध्याय XI) के तहत विचारित निवारक कार्रवाई करने; और ***(iii)*** तलाशी लेने में सक्षम कर सकता है।

29. उपरोक्त आशंकाओं को व्यक्त करने के बाद, प्रेस आयोग ने सिफारिश की कि एक प्रक्रिया तैयार की जाए ताकि उन दो विचारों के बीच संतुलन बनाया जा सके, अर्थात्, ***(i)*** पुलिस द्वारा तुच्छ कार्रवाई और इसके परिणामस्वरूप कथित अपराधी का उत्पीड़न; और ***(ii)*** कुछ मामलों में पुलिस जांच या दंडाधिकारी जांच की वांछनीयता, जहां यह आवश्यक है कि लोक सेवक को खुद को मानहानिकारक आरोपों से मुक्त करना चाहिए।

30. विधि आयोग की 41$^{वीं}$ रिपोर्ट के अनुसार, 1954 के विधेयक पर विचार करने वाली संयुक्त समिति ने सहमति व्यक्त की कि "राष्ट्रपति, राज्यपाल या

किसी राज्य के राजप्रमुख, मंत्री या अन्य लोक सेवक के खिलाफ मानहानि के अपराध को संज्ञेय नहीं बनाया जाना चाहिए। रिपोर्ट में कहा गया है कि संयुक्त समिति के सुझावों के आधार पर ही धारा 198-ख उस रूप में उभरी, जिस रूप में इसे 1955 के अधिनियम के तहत शामिल किया गया था।

31. 41वीं रिपोर्ट के अनुच्छेद 15.143 में धारा 198-ख के औचित्य, दायरे और क्षेत्र को निम्नानुसार सारांशित किया गया है :-

> 15.143. इस प्रकार धारा 198ख बहुत विचार-विमर्श और चर्चा के बाद अपने वर्तमान रूप में उभरी। यह विधेयक के मूल खंड और प्रेस आयोग द्वारा सुझाए गए प्रावधान से काफी भिन्न थी। यह लोक अभियोजक को शामिल करता है, जिसे सरकार के अनुमोदन से की गई शिकायत करने और सत्र न्यायालय के समक्ष विचारण चलाने की उम्मीद की जाती है। *यह इसमें अभियुक्तों के विरुद्ध सरकार का पूरा प्रभाव डाल देता है, जो अन्यथा अभियुक्त और लोक सेवक के बीच एक निजी मुकदमा होता। राज्य के इस हस्तक्षेप को केवल इस आधार पर उचित ठहराया जा सकता है कि अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करने में सरकार का हित है, जब यदि उसके अधिकारियों पर हमले को चुनौती नहीं दी जाती है तो इस पर दाग लगने की संभावना है, या दूसरे शब्दों में, मानहानि, व्यक्ति को नुकसान पहुंचाने के अलावा, राज्य को काफी चोट पहुंचा सकती है।*

32. संक्षेप में, *41वीं रिपोर्ट में माना गया है कि धारा 198-ख में प्रावधान अभियुक्त के खिलाफ सरकार का पूरा प्रभाव डालता है, अन्यथा अभियुक्त और*

लोक सेवक के बीच एक निजी मुकदमा होता। राज्य के इस हस्तक्षेप को केवल इस आधार पर उचित ठहराया जा सकता है कि अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करने में सरकार का हित है, जब यदि उसके अधिकारियों पर हमले को चुनौती नहीं दी जाती है तो इस पर दाग लगने की संभावना है, या दूसरे शब्दों में, मानहानि, व्यक्ति को नुकसान पहुंचाने के अलावा, राज्य को काफी चोट पहुंचा सकती है।

33. विधि आयोग की रिपोर्ट में अनुच्छेद 15.144 में दर्ज किया गया है कि धारा 198ख के पीछे प्राथमिक उद्देश्य एक ऐसी मशीनरी प्रदान करना था जो सरकार को प्रशासन की शुद्धता में विश्वास बनाए रखने के लिए कदम उठाने में सक्षम बनाती हो जब उच्च गणमान्य व्यक्तियों और अन्य लोक सेवकों को गलत तरीके से बदनाम किया जाता है। इसलिए, आयोग ने सिफारिश की कि विशेष प्रावधान केवल उच्च गणमान्य व्यक्तियों के लिए आवश्यक है जो वास्तव में सरकार का गठन करते हैं और यह कि सभी सरकारी कर्मचारियों को उनकी स्थिति पर ध्यान दिए बिना इसमें शामिल करना अनावश्यक है। आयोग ने राय व्यक्त की कि सरकारी कर्मचारी सामान्य रूप से सरकार की अनुमति ले सकते हैं और अपने आधिकारिक आचरण की पुष्टि के लिए न्यायालयों का दरवाजा खटखटा सकते हैं। संक्षेप में, आयोग ने सोचा कि इसे भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति, राज्यों के राज्यपालों, संघ शासित प्रदेशों के प्रशासकों और मंत्रियों, चाहे वे संघ के हों या राज्य के, तक ही सीमित होना चाहिए ।

34. वास्तव में, उपरोक्त सिफारिश करने से पहले, विधि आयोग ने देश भर में दायर मामलों की संख्या और उन अधिकारियों/गणमान्य व्यक्तियों के बारे में आंकड़ों को देखा, जिनकी ओर से वे दायर किए गए थे। आयोग ने निम्नानुसार दर्ज किया:-

> "1955 से धारा 198ख के तहत शुरू किए गए अभियोजनों की संख्या और प्रकृति के बारे में विवरण, जो सत्र न्यायालयों द्वारा हमें प्रस्तुत किए गए थे, से पता चलता है कि तुलनात्मक रूप से बड़ी संख्या में मामले सरकारी कर्मचारियों के अधीनस्थ श्रेणियों की ओर से थे। उदाहरण के लिए, 1955 से 1967 की अवधि के दौरान पंजाब में इस धारा के तहत केवल पच्चीस मामले दर्ज किए गए थे, जिनमें से 2 प्रथम श्रेणी के अधिकारियों से संबंधित थे, 8 द्वितीय श्रेणी के अधिकारियों से संबंधित थे और 15 अन्य सरकारी कर्मचारियों जैसे पुलिस उप-निरीक्षक, पंजीकरण क्लर्क, लेखाकार, चपरासी आदि से संबंधित थे। किसी भी वर्ष में अभियोजनों की कुल संख्या बहुत कम थी।
>
> हमारा विचार है कि धारा के प्रावधान, असाधारण होने के कारण, ऊपर उल्लिखित राज्य के उच्च गणमान्य व्यक्तियों तक ही सीमित होने चाहिए। जहां तक संहिता का संबंध है, अन्य लोक सेवकों की मानहानि के मामले में धारा 198 के साधारण प्रावधान पर्याप्त होने चाहिए।"

35. उपरोक्त सिफारिश करने के अलावा, 41$^{वीं}$ रिपोर्ट में धारा 198-ख की उपधारा (13) और (14) के संबंध में भी कुछ सुझाव दिया गया है। हमें याद होगा कि धारा 198-ख की उपधारा (13) ने इस धारा के प्रावधानों को धारा 198

के प्रावधानों के अतिरिक्त बनाया था, न कि उनके अल्पीकरण हेतु। उपधारा (14) इस आशय के स्पष्टीकरण की प्रकृति में थी कि जहां किसी अपराध के विचारण के लिए इस धारा के अधीन कोई मामला स्थापित किया गया है, वहां उपधारा (13) में किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि ऐसे अपराध से पीड़ित व्यक्ति द्वारा भी शिकायत किए जाने की आवश्यकता है। इन दो उपखंडों के संबंध में, विधि आयोग ने निम्नानुसार सिफारिश की :-

> 15.153 उपधारा (13) में कहा गया है कि "धारा 198ख के प्रावधान धारा 198 के प्रावधानों के अतिरिक्त होंगे, न कि उनके अल्पीकरण हेतु।" इस उपधारा का सटीक अर्थ और प्रभाव तब तक विवाद का विषय था जब तक कि इसे सुप्रीम कोर्ट द्वारा तय नहीं किया गया था। उपधारा को अत्यधिक सावधानी के साथ यह व्यक्त करने की दृष्टि से अधिनियमित किया गया है कि मानहानिकारक बयान के प्रकाशन से असंतुष्ट पक्ष के धारा 198 के तहत कार्यवाही करने के अधिकार का धारा 198-ख के अधिनियमन से अल्पीकरण नहीं होता है। 'इसके अतिरिक्त' और 'इसका अल्पीकरण न करना' अभिव्यक्ति का एक ही अर्थ है, कि धारा 198ख एक अतिरिक्त प्रावधान है और इसका उद्देश्य पीड़ित व्यक्ति को धारा 198 के तहत दिए गए तरीके से शिकायत दर्ज करने के अधिकार को छीनना नहीं है, भले ही वह निर्दिष्ट वर्गों से संबंधित हो और अपराध उसके सार्वजनिक कार्यों के निर्वहन में उसके आचरण के संबंध में हो। उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार इस तर्क को खारिज कर दिया कि, धारा 198ख के तहत आने वाले हर मामले

में, लोक अभियोजक द्वारा दायर शिकायत के अलावा, पीड़ित व्यक्ति द्वारा भी शिकायत होनी चाहिए।

15.154. संभवतः इस स्थिति को स्पष्ट करने की दृष्टि से, भ्रष्टाचार विरोधी कानून (संशोधन) अधिनियम, 1964 द्वारा धारा 198ख में उपधारा (14) जोड़ी गई थी। इस उपधारा में कहा गया है कि "जहां किसी अपराध के विचारण के लिए इस धारा के तहत मामला स्थापित किया गया है, उपधारा (13) में कुछ भी ऐसा नहीं माना जाएगा कि उक्त अपराध से पीड़ित व्यक्ति द्वारा भी शिकायत करने की आवश्यकता है।" सही स्थिति यह प्रतीत होती है कि दोनों धाराओं के तहत पीड़ित व्यक्ति के लिए उपलब्ध उपाय पारस्परिक रूप से अनन्य नहीं हैं, बल्कि एक-दूसरे के समानांतर और स्वतंत्र हैं। जहां पीड़ित व्यक्ति और संबंधित सरकार ने धारा 198ख के तहत कार्यवाही करने का निर्णय लिया है, यह स्पष्ट है कि शिकायत को धारा 198 में निर्धारित शर्तों का पालन करने की आवश्यकता नहीं है। इस विचार को धारा 198 में सामान्य व्यावृत्ति प्रावधान सम्मिलित करके आसानी से सामने लाया जा सकता है, उदाहरण के लिए, "धारा 198ख में अन्यथा प्रदानित को छोड़कर।" यदि ऐसा किया जाता है, तो धारा 198ख में स्पष्ट करने का एकमात्र बिंदु यह होगा कि पीड़ित व्यक्ति का धारा 198 के अनुसार दंडाधिकारी के न्यायालय में स्वयं शिकायत प्रस्तुत करने का अधिकार किसी भी तरह से प्रभावित नहीं हुआ था।

15.155. तदनुसार, हम प्रस्ताव करते हैं कि मौजूदा उपधाराओं (13) और (14) के स्थान पर, निम्नलिखित को धारा 198ख में रखा जा सकता है:—

"(13) इस धारा की कोई भी बात उस व्यक्ति, जिसके विरुद्ध उपधारा (1) में निर्दिष्ट अपराध कथित रूप से किया गया है, के उस अपराध के संबंध में क्षेत्राधिकार वाले दंडाधिकारी के समक्ष शिकायत करने या ऐसी शिकायत पर अपराध का संज्ञान लेने के लिए ऐसे दंडाधिकारी की शक्ति के अधिकार को प्रभावित नहीं करेगी।"

36. दूसरे शब्दों में, विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट में धारा 198ख की तत्कालीन मौजूदा उपधाराओं (13) और (14) को एक नई उपधारा (13) के साथ बदलने की सिफारिश की गई थी। धारा 198ख की यह नई उपधारा (13) का उद्देश्य यह स्पष्ट करना था कि एक व्यक्ति, जिसके खिलाफ मानहानि का अपराध किया गया था, का दंडाधिकारी के समक्ष शिकायत करने का अधिकार संरक्षित था और उक्त अधिकार इस धारा में निहित अन्य प्रावधानों से प्रभावित नहीं होगा।

<u>महत्वपूर्ण पड़ाव -8 (1973 की संहिता)</u>

37. विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट सितम्बर, 1969 में प्रस्तुत की गई थी। तत्पश्चात्, दिसम्बर, 1970 में राज्य सभा में 1970 के विधेयक संख्या XLI में एक मसौदा विधेयक पेश किया गया। विधेयक को संसद के दोनों सदनों की संयुक्त प्रवर समिति को भेजा गया और अंत में जो सामने आया, उसे दोनों सदनों द्वारा पारित किया गया और यह दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का अधिनियम संख्या 2) बन गया।

38. यह 1973 की इस संहिता की धारा 199 है, जिसकी व्याख्या करने के लिए हमें इस मामले में कहा गया है। 1973 की संहिता की धारा 199 इस प्रकार है :-

> "199. मानहानि के लिए अभियोजन- (1) कोई भी न्यायालय भारतीय दंड संहिता)1860 का 45) के अध्याय XXI के तहत दंडनीय अपराध का संज्ञान नहीं लेगा, सिवाय अपराध से पीड़ित किसी व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत के:-
>
> बशर्ते कि जहां ऐसा व्यक्ति अठारह वर्ष से कम आयु का है, या मंदबुद्धि या विक्षिप्त है, या बीमारी या दुर्बलता से शिकायत करने में असमर्थ है, या एक महिला है, जिसे स्थानीय रीति-रिवाजों और शिष्टाचार के अनुसार, सार्वजनिक रूप से पेश होने के लिए मजबूर नहीं किया जाना चाहिए, तो कोई अन्य व्यक्ति, न्यायालय की अनुमति से, उसकी ओर से शिकायत करें।
>
> (2) इस संहिता में निहित किसी बात के होते हुए भी, जब भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अध्याय XXI के अधीन आने वाला किसी अपराध को कोई ऐसे व्यक्ति, जो ऐसा किए जाने के समय भारत के राष्ट्रपति, भारत के उपराष्ट्रपति, किसी राज्य के राज्यपाल, किसी केंद्र शासित प्रदेश के प्रशासक या संघ या राज्य या केंद्र शासित प्रदेश के मंत्री, या संघ या किसी राज्य के मामलों के संबंध में नियोजित कोई अन्य लोक सेवक हो, के विरुद्ध उनके सार्वजनिक कार्यों के निर्वहन में उनके आचरण के संबंध में किए जाने का आरोप लगाया जाता है, सत्र न्यायालय लोक अभियोजक द्वारा की गई लिखित शिकायत

पर, मामले को सौंपे जाए बिना, ऐसे अपराध का संज्ञान ले सकता है।

(3) उपधारा (2) में निर्दिष्ट प्रत्येक शिकायत उन तथ्यों को प्रस्तुत करे जो कथित अपराध का गठन करते हैं, ऐसे अपराध की प्रकृति और ऐसे अन्य विवरण जो अभियुक्त को उसके द्वारा किए गए कथित अपराध का नोटिस देने के लिए यथोचित रूप से पर्याप्त हों।

(4) उप) धारा-2) के तहत कोई भी शिकायत लोक अभियोजक द्वारा निम्नलिखित की पूर्व मंजूरी के बिना नहीं की जाएगी :-

(क) राज्य सरकार की, ऐसे व्यक्ति के मामले में जो उस राज्य का राज्यपाल है या रहा है या उस सरकार का मंत्री है;

(ख) राज्य सरकार की, राज्य के मामलों के संबंध में नियोजित किसी अन्य लोक सेवक के मामले में;

(ग) केंद्र सरकार की, किसी अन्य मामले में।

(5) सत्र का कोई न्यायालय उपधारा (2) के अधीन किसी अपराध का तब तक संज्ञान नहीं लेगा जब तक कि उस तारीख से छह महीने के भीतर शिकायत नहीं की जाती है जिस पर अपराध कथित रूप से किया गया है।

(6) इस धारा की कोई भी बात उस व्यक्ति, जिसके विरुद्ध अपराध कथित रूप से किया गया है, के उस अपराध के संबंध में क्षेत्राधिकार वाले दंडाधिकारी के समक्ष शिकायत करने या ऐसी शिकायत पर अपराध का संज्ञान

लेने के लिए ऐसे दंडाधिकारी की शक्ति के अधिकार को प्रभावित नहीं करेगी।

39. आगे बढ़ने से पहले, इस तथ्य पर ध्यान देना आवश्यक है कि विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट द्वारा जो सिफारिश की गई थी कि तत्कालीन मौजूदा उपधाराओं (13) और (14), जिसका हमने ऊपर अनुच्छेद 35 में उद्धरण दिया है, के स्थान पर धारा 198ख की उप-धारा (13) होगी, वह अब धारा 199 की उपधारा (6) बन गई है। इसे ध्यान में रखते हुए, आइए अब हम दंडाधिकारी द्वारा जारी समन के आदेश को चुनौती देने के लिए अपीलकर्ताओं द्वारा उठाए गए आधारों पर वापस जाएं।

<u>वापस वर्तमान मामलों पर</u>

40. संक्षेप में दोहराने हेतु, इन अपीलों में से एक में अपीलकर्ता (जो अभि-1 है) केवल एक आधार पर समन करने के आदेश का विरोध कर रहा है, अर्थात्, उपधारा (2) द्वारा संरक्षण प्राप्त व्यक्ति धारा 199 की उपधारा (4) में निर्धारित विशेष प्रक्रिया को दरकिनार नहीं कर सकता है। अन्य अपील में अपीलकर्ता (अभि-5) ने दो अतिरिक्त आधार उठाए हैं, अर्थात्, ***(i)*** कि उनके द्वारा भेजे गए ट्वीट्स की सामग्री अपने आप में मानहानिकारक नहीं थी; और ***(ii)*** भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 65ख के आदेश का पालन किए बिना ट्वीट्स की प्रतिलिपि पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। पहले हम उस साझा आधार पर

विचार करते हैं जिस पर दोनों अपीलकर्ता समन जारी करने के आदेश को चुनौती देते हैं।

<u>क्या विशेष प्रक्रिया सामान्य प्रक्रिया को प्रभावहीन करती है?</u>

41. इस तर्क के समर्थन में कि धारा 199 की उप-धारा (2) द्वारा संरक्षित व्यक्ति को धारा 199 की उपधारा (4) द्वारा निर्धारित विशेष प्रक्रिया से गुजरना होगा, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने ***पी.सी. जोशी, सुब्रमण्यम स्वामी*** और ***के.के. मिश्रा*** (पूर्वोक्त) में इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया है। इसलिए, आइए इन निर्णयों के विनिश्चय-आधार को देखें।

42. ***पी.सी. जोशी*** (पूर्वोक्त), लोक अभियोजक, कानपुर ने एक अंग्रेजी साप्ताहिक के संपादक, मुद्रक और प्रकाशक के खिलाफ सत्र न्यायालय में एक शिकायत दायर की, जिसमें दावा किया गया कि उसमें प्रकाशित एक समाचार राज्य के मुख्यमंत्री के लिए अपमानजनक था। शिकायत के साथ 1898 की संहिता की धारा 198ख(3) के तहत मुकदमा चलाने की मंजूरी देने का गृह सचिव का आदेश भी दाखिल किया गया था। गवाहों का परीक्षण करने के बाद सत्र न्यायाधीश ने आरोप तय किए। आरोप तय करने के आदेश को संपादक और प्रकाशक द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष असफल रूप से चुनौती दी गई थी और मामला इस न्यायालय के समक्ष आ गया था। 1898 की संहिता की धारा 198ख के तहत निर्धारित विशेष प्रक्रिया के पीछे के उद्देश्य को इस न्यायालय द्वारा

पी.सी. जोशी (पूर्वोक्त) में विस्तार से बताया गया था। *पी.सी. जोशी* (पूर्वोक्त) में रिपोर्ट के अनुच्छेद 7 में, इस न्यायालय ने संकेत दिया कि धारा 198ख ने व्यापक जनहित में सामान्य नियम से हटकर काम किया है। ऐसा अभिनिर्धारित करने के बाद, इस न्यायालय ने स्पष्ट किया कि *"के अल्पीकरण में नहीं"* अभिव्यक्ति धारा 198ख की उपधारा (13) में पेश होने से स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि धारा 198ख के प्रावधान धारा 198 द्वारा प्रदान किए गए उपाय को बाधित नहीं करते हैं। इस न्यायालय ने कहा :- "*इसका अर्थ यह है कि धारा 198ख के द्वारा, पीड़ित व्यक्ति को मानहानि के अपराध के लिए धारा 198 के तहत दंडाधिकारी के समक्ष शिकायत दर्ज करने का अधिकार, भले ही पीड़ित व्यक्ति निर्दिष्ट वर्गों से संबंधित हो और मानहानि उसके सार्वजनिक कार्यों के निर्वहन में उसके आचरण के संबंध में हो, छीना या बाधित नहीं किया जाता है। यदि उपधारा (13) का अर्थ यह लगाया जाए कि धारा 198ख के प्रावधानों को धारा 198 के प्रावधानों के पूरक के रूप में पढ़ा जाना है, तो धारा 198ख की उपधारा (1) जिस गैर-बाध्यकारी खंड के साथ शुरू होती है, वह पूरी तरह से व्यर्थ हो जाता है।*"

43. *पी.सी. जोशी* (पूर्वोक्त) में एक तर्क दिया गया था कि 1898 की संहिता की धारा 198ख की उपधारा (6) से (11) में तंग करने वाले अभियोजन के मामले में क्षतिपूर्ति देने का प्रावधान था और यदि पीड़ित व्यक्ति शिकायतकर्ता नहीं था, तो उस अभियुक्त को मुआवजा देने का निर्देश देना संभव नहीं था, जिसे एक

तंग करने वाली शिकायत का सामना करना पड़ा था। उक्त तर्क को ***पी.सी. जोशी*** (पूर्वोक्त) में धारा 198ख की उपधारा (5) के आधार पर खारिज कर दिया गया था, जिसके तहत उस व्यक्ति का, जिसके खिलाफ अपराध किया गया था, अभियोजन हेतु गवाह के रूप में परीक्षण अपेक्षित था। ***पी.सी. जोशी*** (पूर्वोक्त) में रिपोर्ट के अनुच्छेद 8 में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया :-

> "8. अपीलकर्ताओं की ओर से धारा 198ख की उप-धारा (6) से (11) का अवलंब लिया गया था, जो यदि न्यायालय संतुष्ट है कि आरोप झूठे हैं और या तो तुच्छ या तंग करने वाले हैं, तो अभियुक्त व्यक्ति को क्षतिपूर्ति देने का प्रावधान करती हैं, और यह प्रस्तुत किया गया था कि विधायिका का इरादा यह नहीं हो सकता था कि एक व्यक्ति जो शिकायतकर्ता नहीं था और जो कार्यवाही से सीधे संबंधित नहीं था, उसे फिर भी मुआवजे का भुगतान करने की आवश्यकता हो सकती है यदि न्यायालय द्वारा ऐसा आदेश दिया गया हो। परंतु उप-धारा (5), जिसमें यह प्रावधान है कि कोई व्यक्ति जिसके विरुद्ध अपराध कथित रूप से किया गया है, जब तक कि न्यायालय अभिलिखित किए जाने वाले कारणों के लिए अन्यथा निर्देश न दे, की अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में परीक्षा की जाएगी, स्पष्ट रूप से यह इंगित करती है कि यह प्रश्न कि क्या शिकायत झूठी थी और या तो तुच्छ या तंग करने वाली थी, केवल तभी निर्धारित किया जा सकता है जब मानहानि होने की शिकायत करने वाला व्यक्ति सक्रिय रूप से शिकायत का समर्थन करता है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा 198ख में ऐसे व्यक्ति हेतु मुआवजे का प्रावधान है जो शिकायत से संबंधित नहीं है।"

44. ***सुब्रमण्यम स्वामी*** (पूर्वोक्त) में यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत रिट याचिकाओं के एक समूह पर विचार कर रहा था जिसमें भा.दं.सं. की धारा 499 और 500 और 1973 की संहिता की धारा 199(1) से 199(4) की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी गई थी। ***सुब्रमण्यम स्वामी*** मामले में रिपोर्ट के अनुच्छेद 203 में 1973 की संहिता की धारा 199 की अन्य उपधाराओं पर उप-धारा (6) के प्रभाव को निम्नानुसार दर्शाया गया था :-

> "203. उपधारा (6) एक लोक सेवक को वह देती है जो प्रत्येक नागरिक के पास है क्योंकि उसे एक नागरिक के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है। ऐसे मामले हो सकते हैं जहां राज्य सरकार द्वारा लोक सेवक के पक्ष में उसके अधिकार की रक्षा के लिए मंजूरी नहीं दी जाए और उस स्थिति में, वह दंडाधिकारी के समक्ष मामला दायर कर सकता है। उक्त प्राधिकारियों के संबंध में मानहानि के मामलों में लोक अभियोजक की नियुक्ति से संबंधित प्रावधान की इस आधार पर गंभीरता से आलोचना की जाती है कि यह उसमें उल्लिखित प्राधिकारियों और लोक सेवकों को प्रतिशोध लेने के उनके इरादे के समर्थन हेतु लोक अभियोजक का उपयोग करने के लिए अनावश्यक स्थान प्रदान करता है। एक बार जब यह मान लिया जाता है कि लोक सेवक अपने कर्तव्यों और कार्यों के निर्वहन से संबंधित आचरण के संबंध में एक अलग वर्ग का गठन करते हैं, तो लोक अभियोजक की नियुक्ति में दोष नहीं पाया जा सकता है। आमतौर पर यह उम्मीद की जाती है कि लोक अभियोजक का कर्तव्य उन सामग्रियों की जाँच

> करना है जिनके आधार पर मानहानि के लिए शिकायत दर्ज की जानी है। न्यायालय के प्रति उनका कर्तव्य है। इस न्यायालय ने *बैरम मुरलीधर बनाम आंध्र प्रदेश राज्य* में दं.प्र.सं. की धारा 321 पर विचार-विमर्श करते हुए यह मत व्यक्त किया कि लोक अभियोजक राज्य सरकार की ओर से एक डाकघर की तरह काम नहीं कर सकता है। उसे सद्भावना में कार्य करने, अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री का अवलोकन करने और एक स्वतंत्र राय बनाने की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त यह टिप्पणी की गई कि वह संहिता के तहत अपने कानूनी दायित्वों से अनजान नहीं रह सकता है और उसका न्यायालय के प्रति अपने कर्तव्य के साथ-साथ सामूहिक रूप से अपने कर्तव्य को सदैव याद रखना आवश्यक है। भा.दं.सं. की धारा 499 और 500 के तहत मामले दर्ज करते समय, उनसे उस स्वतंत्रता को बनाए रखने और मशीन के रूप में कार्य नहीं करने की उम्मीद की जाती है।

45. उपरोक्त अंश पर अपीलकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क देने के लिए भरोसा किया गया है कि यह केवल उन मामलों में है जहां राज्य सरकार अभियोजन के लिए मंजूरी देने से इनकार करती है, कि धारा 199 की उप-धारा (6) के तहत व्यक्तिगत अधिकार को लागू किया जा सकता है। लेकिन हमें डर है कि इस तरह का निष्कर्ष ***सुब्रमण्यम स्वामी*** (पूर्वोक्त) में निर्णय के अनुच्छेद 203 में जो टिप्पणी की गई है, उससे नहीं निकलता है। यह कहना कि धारा 199 की उप-धारा (6) के प्रावधानों को व्यक्तिगत लोक सेवक द्वारा लागू किया जा सकता है, केवल उन मामलों में जहां राज्य सरकार उसके बचाव

में नहीं आती है, उपधारा (6) की सरल भाषा का उल्लंघन कर सकता है। धारा 199 की उपधारा (6) इन शब्दों से शुरू होती है "*इस धारा की कोई भी बात उस व्यक्ति के अधिकार को प्रभावित नहीं करेगी जिसके विरुद्ध अपराध किए जाने का आरोप है।*" उपधारा (6) में ऐसी कोई शर्त नहीं है जिसके अधीन उसके तहत अधिकार का प्रयोग किया जा सके।

46. धारा 199 की उपधारा (2) में उपस्थित गैर-बाध्यकारी खंड भी अपीलकर्ताओं के बचाव में नहीं आएगा, क्योंकि उक्त खंड भी उपधारा (6) में आए शब्दों *इस खंड में मौजूद कुछ भी नहीं* से प्रभावहीन हो गया है। उपधारा (6) में दिखाई देने वाले शब्द *"कुछ भी नहीं"* में उप-धारा (1) में उपस्थित गैर-बाध्यकारी खंड भी शामिल होगा।

47. ***के.के. मिश्रा*** (पूर्वोक्त) में यह न्यायालय धारा 199(2) के तहत स्थापित अभियोजन की विचारणीयता को चुनौती देने से संबंधित था। ***पी.सी. जोशी*** और ***सुब्रमण्यम स्वामी*** (पूर्वोक्त) में निर्णयों का जिक्र करने के बाद, इस न्यायालय ने अभियोजन पक्ष को मुख्य रूप से दो आधारों पर सुनवाई योग्य नहीं माना, अर्थात् ***(i)*** यह कि कथित मानहानिकारक बयानों का मुख्यमंत्री के कार्यालय द्वारा सार्वजनिक कर्तव्यों के निर्वहन के साथ कोई उचित संबंध होना नहीं कहा जा सकता है और यह कि इसलिए मुख्यमंत्री को केवल धारा 199 की उप-धारा (6) के प्रावधानों का सहारा लेना चाहिए था; और ***(ii)*** यह कि किसी भी

स्थिति में लोक अभियोजक अपने सामने रखी गई सामग्रियों पर विचार करने में विफल रहा था, जिससे उसके द्वारा प्रस्तुत शिकायत को हानि पहुंची थी।

48. हम नहीं जानते कि ***के.के. मिश्रा*** (पूर्वोक्त) में निर्णय कैसे अपीलकर्ताओं के लिए किसी भी प्रकार सहायक होगा। लोक अभियोजक ने विचार किया या नहीं, यह सवाल इस मामले में नहीं उठ सकता है, क्योंकि प्रत्यर्थी सं. 1 ने धारा 199(6) के संदर्भ में खुद ही शिकायत दर्ज की है। यह सवाल कि कथित मानहानिकारक बयान प्रत्यर्थी सं. 1 के कर्तव्यों के आधिकारिक निर्वहन से संबंधित हैं या नहीं, तथ्यों पर टिका है।

49. केवल इसलिए कि यह ***के.के. मिश्रा*** (पूर्वोक्त) में कहा गया था कि धारा 199 की उपधारा (2) और (4) में जो परिकल्पित किया गया है वह सामान्य नियम से अलग है, इसका मतलब यह नहीं है कि उपधारा (6) अमान्य है। वास्तव में अपीलकर्ताओं की मदद करने से अधिक, ***के.के. मिश्रा*** (पूर्वोक्त) के अनुच्छेद 7 में प्रतिपादित अनुपात प्रत्यर्थी सं. 1 के रुख का समर्थन करता है। ***के.के. मिश्रा*** (पूर्वोक्त) का अनुच्छेद 7 और 8 इस प्रकार है :-

> 7. दं.प्र.सं. की धारा 199(2) में संवैधानिक पदाधिकारियों और लोक सेवकों के खिलाफ किए गए मानहानि के अपराध के लिए अभियोजन शुरू करने के संबंध में एक विशेष प्रक्रिया का प्रावधान है। तथापि, कथित रूप से किया गया अपराध संबंधित पदाधिकारी अथवा लोक सेवक के

सार्वजनिक कार्यों के निर्वहन में कृत्यों/आचरण के संबंध में होना चाहिए, जैसा भी हो। दं.प्र.सं. की धारा 199 (2) के तहत अभियोजन लोक अभियोजक द्वारा संहिता की धारा 199(4) के तहत राज्य/केंद्र सरकार में सक्षम प्राधिकारी की पूर्व स्वीकृति प्राप्त होने पर शुरू किया जाना अपेक्षित है। इस तरह की शिकायत सत्र न्यायालय में दायर करने की आवश्यकता होती है जिसके पास कथित अपराध की सुनवाई और विचारण करने का अधिकार क्षेत्र निहित है और यहां तक कि एक अधीनस्थ न्यायालय द्वारा उक्त न्यायालय को मामला सौपे बिना भी। इसलिए, दं.प्र.सं. की धारा 199(2) को धारा 199(4) दं.प्र.सं. के साथ पढ़ना, मानहानि के अपराध का आरोप लगाते हुए प्रभावित व्यक्तियों द्वारा दंडाधिकारी के समक्ष शिकायत शुरू करने के सामान्य नियम से हटकर परिकल्पना करता है। हालांकि, उक्त अधिकार को धारा 199 दं.प्र.सं. की उप-धारा (2) में उल्लिखित व्यक्तियों की श्रेणी के मामलों में भी उसकी उप-धारा (6) द्वारा सुरक्षित किया जाता है।

8. सामान्य नियम से हटने के औचित्य को इस न्यायालय द्वारा *पी.सी. जोशी* बनाम *उत्तर प्रदेश राज्य* (एआईआर पृ. 391-92, अनुच्छेद 9) में काफी पुराने निर्णय में विस्तार से निपटाया गया है। दं.प्र.सं. की धारा 199(2) द्वारा निर्धारित विशेष प्रक्रिया के लिए इस न्यायालय द्वारा तार्किक माना गया मुख्य कारण यह है कि इसमें उल्लिखित पदाधिकारियों के खिलाफ किया गया मानहानि का अपराध वास्तव में राज्य के खिलाफ किया गया अपराध है क्योंकि यह ऐसे पदाधिकारियों द्वारा सार्वजनिक कार्यों के निर्वहन से संबंधित है। इसलिए, राज्य अभियोजन

को आगे बढ़ाने में उचित रुचि रखेगा; इसलिए विशेष प्रावधान और विशेष प्रक्रिया हैं।

50. जैसा कि ऊपर उद्धरित ***के.के. मिश्रा*** (पूर्वोक्त) के भाग से देखा जा सकता है, उपधारा (6) के तहत एक व्यक्ति का अधिकार सुरक्षित है, भले ही वह उपधारा (2) में उल्लिखित व्यक्तियों की श्रेणी में आता हो।

51. लोक सेवकों की मानहानि के अपराध के लिए अभियोजन से संबंधित कानून के विकास के लंबे इतिहास से पता चलता है कि 1955 में शुरू की गई और 1964 में ठीक की गई और 1973 में बदली गई विशेष प्रक्रिया उस अधिकार के अतिरिक्त थी और न कि उसके अल्पीकरण में थी जो एक लोक सेवक को हमेशा एक व्यक्ति के रूप में प्राप्त थी। उन्होंने कभी भी अपना अधिकार केवल इसलिए नहीं खोया क्योंकि वह एक लोक सेवक बन गए और केवल इसलिए कि आरोप उनके कर्तव्यों के आधिकारिक निर्वहन से संबंधित हैं। धारा 199 की उपधारा (6) जो विधि आयोग की 41$^{वीं}$ रिपोर्ट में अनुशंसित बातों का पुनरुत्पादन है को धारा 198ख की उपधारा (13) बनाने हेतु यह अभिनिर्धारित करते हुए अप्रभावी नहीं बनाया जा सकता है कि धारा 199 की उपधारा (2) द्वारा सुरक्षित व्यक्तियों को अनिवार्य रूप से केवल धारा 199 की उपधारा (4) द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का पालन करना होगा। इसलिए, दोनों अपीलकर्ताओं द्वारा उठाए गए समान आधार को खारिज कर दिया जाना चाहिए। धारा 199 की उपधारा (2) में उल्लिखित व्यक्तियों की श्रेणी में आने वाला

व्यक्ति या तो धारा 199 की उप-धारा (4) में निर्दिष्ट मार्ग का उपयोग कर सकता है या उप-धारा (6) में निर्दिष्ट मार्ग ले सकता है।

52. धारा 199(4) से उत्पन्न एक गौण तर्क यह है कि संहिता की धारा 237 दुर्भावनापूर्ण अभियोजन या बिना उचित कारण अभियोजन के खिलाफ एक सुरक्षा वाल्व प्रदान करती है। धारा 237 इस प्रकार है :-

> "237. **धारा 199(2) के तहत स्थापित मामलों में प्रक्रिया-** (1) धारा 199 की उपधारा (2) के अधीन अपराध का संज्ञान करने वाला सेशन न्यायालय मामले का विचारण, मजिस्ट्रेट के न्यायालय के समक्ष पुलिस रिपोर्ट से भिन्न आधार पर संस्थित किए गए वारंट मामलों के विचारण की प्रक्रिया के अनुसार, करेगा :-
>
> परन्तु जब तक सेशन न्यायालय उन कारणों से, जो लेखबद्ध किए जाएंगे, अन्यथा निदेश नहीं देता है उस व्यक्ति की, जिसके विरुद्ध अपराध का किया जाना अभिकथित है अभियोजन के साक्षी के रूप में परीक्षा की जाएगी।
>
> (2) यदि विचारण के दोनों पक्षकारों में से कोई ऐसी वांछा करता है या यदि न्यायालय ऐसा करना ठीक समझता है तो इस धारा के अधीन प्रत्येक विचारण बंद कमरे में किया जाएगा।
>
> (3) यदि ऐसे किसी मामले में न्यायालय सब अभियुक्तों को या उनमें से किसी को उन्मोचित या दोषमुक्त करता है

और उसकी यह राय है कि उनके या उनमें से किसी के विरुद्ध अभियोग लगाने का उचित कारण नहीं था तो वह उन्मोचन या दोषमुक्ति के अपने आदेश द्वारा (राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल या किसी संघ राज्यक्षेत्र के प्रशासक से भिन्न) उस व्यक्ति को, जिसके विरुद्ध अपराध का किया जाना अभिकथित किया गया था यह निदेश दे सकेगा कि वह कारण दर्शित करे कि वह उस अभियुक्त को या जब ऐसे अभियुक्त एक से अधिक हैं तब उनमें से प्रत्येक को या किसी को प्रतिकर क्यों न दे।

(4) न्यायालय इस प्रकार निदिष्ट व्यक्ति द्वारा दर्शित किसी कारण को लेखबद्ध करेगा और उस पर विचार करेगा और यदि उसका समाधान हो जाता है कि अभियोग लगाने का कोई उचित कारण नहीं था, तो वह एक हजार रुपए से अनधिक इतनी रकम का, जितनी वह अवधारित करे, प्रतिकर उस व्यक्ति द्वारा अभियुक्त को या, उनमें से प्रत्येक को या किसी को दिए जाने का आदेश, उन कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएंगे, दे सकेगा।

(5) उपधारा (4) के अधीन अधिनिर्णीत प्रतिकर ऐसे वसूल किया जाएगा मानो वह मजिस्ट्रेट द्वारा अधिरोपित किया गया जुर्माना हो।

(6) उपधारा (4) के अधीन प्रतिकर देने के लिए जिस व्यक्ति को आदेश दिया जाता है उसे ऐसे आदेश के कारण इस धारा के अधीन किए गए परिवाद के बारे में किसी सिविल या दांडिक दायित्व से छूट नहीं दी जाएगी :-

परन्तु अभियुक्त व्यक्ति को इस धारा के अधीन दी गई कोई रकम, उसी मामले से संबंधित किसी पश्चात्वर्ती सिविल वाद में उस व्यक्ति के लिए प्रतिकर अधिनिर्णीत करते समय हिसाब में ली जाएगी।

(7) वह व्यक्ति जिसे उपधारा (4) के तहत मुआवजे का भुगतान करने का आदेश दिया गया है, आदेश से, जहां तक यह मुआवजे के भुगतान से संबंधित है, उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है।

(8) जब किसी अभियुक्त व्यक्ति को प्रतिकर दिए जाने का आदेश किया जाता है, तब उसे ऐसा प्रतिकर, अपील पेश करने के लिए अनुज्ञात अवधि के बीत जाने के पूर्व, या यदि अपील पेश कर दी गई है तो अपील के विनिश्चित कर दिए जाने के पूर्व, नहीं दिया जाएगा।

अपीलकर्ताओं का तर्क यह है कि यदि लोक सेवक विशेष प्रक्रिया से बचता है और व्यक्तिगत रूप से शिकायत दर्ज करता है तो अभियुक्त को संहिता की धारा 237 के तहत प्राप्त संरक्षण नष्ट हो जाएगा।

53. यह सच है कि धारा 237 की उप-धारा (3) के तहत, ऐसे मामलों में जहां न्यायालय न केवल अभियुक्त को आरोपमुक्त या बरी करती है, बल्कि उसकी यह भी राय है कि उसके खिलाफ आरोप लगाने का कोई उचित कारण नहीं था, न्यायालय को लोक सेवक (राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल या केंद्र शासित प्रदेश के प्रशासक के अलावा) को कारण बताने का निर्देश देने

का अधिकार है कि उसे मानहानि का अपराध करने के अभियुक्त व्यक्ति को मुआवजा क्यों नहीं देना चाहिए।

54. लेकिन धारा 237(3) कोई नया आविष्कार नहीं है। 1898 की पुरानी संहिता की धारा 198ख की उप-धाराओं (6) से (11) में जो निहित था, उसने धारा 237 में एक नया आकार ले लिया है। इसके अलावा, ऐसा नहीं है कि किसी व्यक्ति द्वारा उचित कारण के बिना अभियोजन के खिलाफ ऐसा कोई सुरक्षा वाल्व नहीं है, जब वह धारा 199 की उपधारा (6) को लागू करता है। जब भी किसी व्यक्ति पर धारा 199(6) के आधार पर दंडाधिकारी के समक्ष अपनी व्यक्तिगत क्षमता में एक लोक सेवक द्वारा मुकदमा चलाया जाता है, तो अभियुक्त हमेशा इस आधार पर मुआवजे का दावा करने के लिए धारा 250 का सहारा ले सकता है कि आरोप उचित कारण के बिना लगाए गए थे। संहिता की धारा 250 इस प्रकार है :-

> "250. **उचित कारण के बिना अभियोग के लिए प्रतिकर** - (1) यदि परिवाद पर या पुलिस अधिकारी या मजिस्ट्रेट को दी गई इत्तिला पर संस्थित किसी मामले में मजिस्ट्रेट के समक्ष एक या अधिक व्यक्तियों पर मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय किसी अपराध का अभियोग है और वह मजिस्ट्रेट जिसके द्वारा मामले की सुनवाई होती है, सब अभियुक्तों को या उनमें से किसी को उन्मोचित या दोषमुक्त कर देता है और उसकी यह राय है कि उनके या उनमें से किसी के विरुद्ध अभियोग लगाने का कोई उचित कारण

नहीं था तो वह मजिस्ट्रेट उन्मोचन या दोषमुक्ति के अपने आदेश द्वारा, यदि वह व्यक्ति जिसके परिवाद या इत्तिला पर अभियोग लगाया गया था उपस्थित है तो उससे अपेक्षा कर सकेगा कि वह तत्काल कारण दर्शित करे कि वह उस अभियुक्त को, या जब ऐसे अभियुक्त एक से अधिक हैं तो उनमें से प्रत्येक को या किसी को प्रतिकर क्यों न दे अथवा यदि ऐसा व्यक्ति उपस्थित नहीं है तो हाजिर होने और उपर्युक्त रूप से कारण दर्शित करने के लिए उसके नाम समन जारी किए जाने का निदेश दे सकेगा।

(2) मजिस्ट्रेट ऐसा कोई कारण, जो ऐसा परिवादी या इत्तिला देने वाला दर्शित करता है, अभिलिखित करेगा और उस पर विचार करेगा और यदि उसका समाधान हो जाता है कि अभियोग लगाने का कोई उचित कारण नहीं था तो जितनी रकम का जुर्माना करने के लिए वह सशक्त है, उससे अनधिक इतनी रकम का, जितनी वह अवधारित करे, प्रतिकर ऐसे परिवादी या इत्तिला देने वाले द्वारा अभियुक्त को या उनमें से प्रत्येक को या किसी को दिए जाने का आदेश, ऐसे कारणों से, जो लेखबद्ध किए जाएंगे, दे सकेगा।

(3) मजिस्ट्रेट उपधारा (2) के अधीन प्रतिकर दिए जाने का निदेश देने वाले आदेश द्वारा यह अतिरिक्त आदेश दे सकेगा कि वह व्यक्ति, जो ऐसा प्रतिकर देने के लिए आदिष्ट किया गया है, संदाय में व्यतिक्रम होने पर तीस दिन से अनधिक की अवधि के लिए सादा कारावास भोगेगा।

(4) जब किसी व्यक्ति को उपधारा (3) के अधीन कारावास दिया जाता है तब भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 68 और 69 के उपबंध, जहां तक हो सके, लागू होंगे।

(5) इस धारा के अधीन प्रतिकर देने के लिए जिस व्यक्ति को आदेश दिया जाता है, ऐसे आदेश के कारण उसे अपने द्वारा किए गए किसी परिवाद या दी गई किसी इत्तिला के बारे में किसी सिविल या दांडिक दायित्व से छूट नहीं दी जाएगी:-

परन्तु अभियुक्त व्यक्ति को इस धारा के अधीन दी गई कोई रकम उसी मामले से संबंधित किसी पश्चात्वर्ती सिविल वाद में उस व्यक्ति के लिए प्रतिकर अधिनिर्णीत करते समय हिसाब में ली जाएगी।

(6) कोई परिवादी या इत्तिला देने वाला, जो द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट द्वारा उपधारा (2) के अधीन एक सौ रुपए से अधिक प्रतिकर देने के लिए आदिष्ट किया गया है, उस आदेश की अपील ऐसे कर सकेगा मानो वह परिवादी या इत्तिला देने वाला ऐसे मजिस्ट्रेट द्वारा किए गए विचारण में दोषसिद्ध किया गया है।

(7) जब किसी अभियुक्त व्यक्ति को ऐसे मामले में, जो उपधारा (6) के अधीन अपीलनीय है, प्रतिकर दिए जाने का आदेश किया जाता है तब उसे ऐसा प्रतिकर, अपील पेश करने के लिए अनुज्ञात अवधि के बीत जाने के पूर्व या यदि अपील पेश कर दी गई है तो अपील के विनिश्चित कर दिए जाने के पूर्व न दिया जाएगा और जहां ऐसा आदेश ऐसे मामले में हुआ है, जो ऐसे अपीलनीय नहीं है, वहां

ऐसा प्रतिकर आदेश की तारीख से एक मास की समाप्ति के पूर्व नहीं दिया जाएगा।

(8) इस धारा के उपबंध समन-मामलों तथा वारण्ट मामलों दोनों को लागू होंगे।

55. इसलिए, संहिता की धारा 237 को कुछ भी लागू नहीं करता है। धारा 199 (2) और 199 (4) के इर्द-गिर्द घूमने वाले तर्क का समर्थन करने के लिए धारा 237 को बैसाखी के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है।

56. चूंकि हम धारा 199 की उपधारा (2) और (4) के इर्द-गिर्द घूमने वाले तर्क को खारिज कर रहे हैं और चूंकि यह एकमात्र तर्क है जिस पर श्री मनोज कुमार तिवारी (क-1) उपरोक्त अपील के साथ आए हैं, इसलिए 2021 के वि.अनु.या. (आप.) सं. 351 से उत्पन्न आपराधिक अपील में उनकी अपील खारिज की जा सकती है। तदनुसार, इसे खारिज किया जाता है।

<u>श्री विजेंद्र गुप्ता (ए-5) के मामले में अतिरिक्त आधार</u>

57. इस निर्णय के पहले भाग में, जहां हमने पृष्ठभूमि के तथ्य प्रदान किए हैं, हमने संकेत दिया है कि विद्वान अतिरिक्त मुख्य महानगर दंडाधिकारी ने श्री विजेंद्र गुप्ता (क-5) को भा.दं.सं. की धारा 34 के तहत अपराध के लिए मुकदमा चलाने के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया है। हमने अतिरिक्त मुख्य महानगर दंडाधिकारी द्वारा पारित 28.11.2019 के समन आदेश के अनुच्छेद 14 को कहीं

और उद्धरित किया है, जो इन अपीलों में आक्षेप किए गए आदेश में उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती का विषय बन गया।

58. इस तथ्य के आलोक में कि विद्वान अतिरिक्त मुख्य महानगर दंडाधिकारी ने केवल श्री विजेंदर गुप्ता के खिलाफ धारा 500 भा.दं.सं. के तहत अपराध का संज्ञान लिया है, हमारे लिए यह परीक्षण करना पर्याप्त है कि क्या उनके हवाले से किए गए ट्वीट को *अपने आप में* मानहानिकारक कहा जा सकता है। यह आपराधिक न्यायशास्त्र का एक मौलिक नियम है कि यदि शिकायत में निहित आरोप, भले ही सहीं माने जाए, शिकायत किए गए अपराध का गठन नहीं करते हैं, अभियुक्त व्यक्ति को विचारण की अग्निपरीक्षा से नहीं गुजरने दिया जाना चाहिए। इसलिए, आइए हम श्री विजेंदर गुप्ता (क-5) के हवाले से किए गए ट्वीट्स पर एक नज़र डालें। ये ट्वीट दिल्ली उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय के अनुच्छेद 44 और 45 में उद्धरित किए गए हैं और उन्हें निम्नानुसार प्रस्तुत किया गया है :-

> "44. आप.वि.वा. 2355/2020 के याचिकाकर्ता का कथित आपराधिक ट्वीट निम्नानुसार है:–
>
> विजेंदर गुप्ता @ गुप्ता, विजेंद... 01 जुलाई
>
> दिल्ली के मुख्यमंत्री @ अरविंद केजरीवाल और उपमुख्यमंत्री @msisodia, कृपया मेरे 24 सवालों के जवाब दें

मुझे यकीन है कि आपका जवाब इन कमरों के निर्माण में आपके घोटाले का खुलासा करेगा लेकिन आप जवाब देने से बच रहे हैं लेकिन मैं जवाब प्राप्त करूंगा।

45. हालांकि ट्वीट स्वयं शिकायतकर्ता से उक्त कथित ट्विटर के 24 सवालों का जवाब देने की मांग करती है, जो प्रश्न इस प्रकार हैं:-

1. शिक्षा निदेशालय में प्राथमिकता के तहत कितने कमरे और कुल कितनी लागत मंजूर की गई थी?

2. प्राथमिकता के तहत प्रति वर्ग मीटर निर्माण की लागत क्या है और प्रति कमरे के निर्माण की लागत क्या है?

3. डीओई द्वारा इसके लिए क्या एए और ईएस दिए गए थे और किन शर्तों के साथ?

4. बागवानी, भूनिर्माण, वर्षा जल संचयन आदि सहित लागत अनुमानों में कौन-कौन से घटक शामिल किए गए थे? अनुमानित व्यय के रूप में विभिन्न घटकों को सूचीबद्ध करें?

5. प्राथमिकता के तहत पूरा होने का समय क्या था?

6. प्राथमिकता के तहत भवन-वार अब तक वास्तव में कितने कमरों का निर्माण किया गया है और किस अलग-अलग समय पर बनाया गया है?

7. इन कमरों को सौपनें में कितना अतिरिक्त समय लगा?

8. प्राथमिकता के तहत भवन/स्कूल-वार कितने कमरों का निर्माण किया जाना बाकी है?

9. प्राथमिकता के तहत बागवानी, भूनिर्माण आदि सहित शेष कौन-कौन से कार्य भवन/स्कूल-वार दोनों बाकी हैं?

10. क्या प्राथमिकता के तहत कमरों के निर्माण में पीडब्ल्यूडी द्वारा कोई लागत वृद्धि हुई है?

11. यदि हां, तो कृपया विवरण दें - पीडब्ल्यूडी जोन-वार और स्कूल/भवन-वार?

12. लागत वृद्धि के क्या कारण थे?

13. क्या पीडब्ल्यूडी द्वारा लागू किए जाने से पहले डीओई द्वारा इन कारणों को मंजूरी दी गई है?

14. क्या डीओई द्वारा दिए गए एए और ईएस में कोई पूर्व शर्त है कि पूर्व अनुमोदन के बिना कितनी लागत वृद्धि की अनुमति है और कब अनुमोदन की आवश्यकता होती है?

15. क्या सक्षम प्राधिकारी का ऐसा अनुमोदन लिया गया था?

16. यदि नहीं, तो लोक निर्माण विभाग के संबंधित अधिकारियों के विरुद्ध क्या कार्रवाई की जाती है?

17. पीडब्ल्यूडी के ठेकेदार पर अतिरिक्त समय लेने पर क्या दंड लगाया जाता है?

18. क्या पीडब्ल्यूडी द्वारा किया गया कार्य विनिर्देशों के अनुसार है?

19. क्या पीडब्ल्यूडी द्वारा निर्मित जल निकासी प्रणाली पीडब्ल्यूडी के विनिर्देशों के अनुसार सभी मंजिलों पर इमारत के अग्रभाग पर पाइप का उपयोग करके बनाई गई है?

20. डीओई द्वारा 2016-17, 2017-18, 2018-19 के दौरान सिविल वर्कर्स के लिए पीडब्ल्यूडी को योजनावार कितने ईओआर स्वीकृत किए गए हैं?

21. ईओआर के तहत और प्राथमिकता में किए गए कार्यों के तहत काम के किसी भी दोहराव से बचने के लिए डीओई द्वारा क्या कदम उठाए गए हैं?

22. डीओई के तहत प्राथमिकता II के तहत कितने कमरे और कितनी कुल लागत पर मंजूरी दी गई थी?

23. प्राथमिकता-II के तहत प्रति वर्ग मीटर निर्माण की लागत क्या है और प्रति कमरे निर्माण की लागत क्या है?

24. प्राथमिकता I के संदर्भ में प्राथमिकता II के अंतर्गत लागत अनुमानों में कौन-कौन से अतिरिक्त घटक शामिल हैं? नए घटकों और उन पर होने वाले खर्च की सूची दें।

59. जाहिर है और स्पष्ट रूप से श्री विजेंद्र गुप्ता (क-5) द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 से पूछे गए चौबीस प्रश्नों को मानहानिकारक नहीं कहा जा सकता है क्योंकि ये प्रश्न कुछ इमारतों के निर्माण से संबंधित कुछ तथ्यों के उत्तर मांगते हैं। जिसे मानहानिकारक के रूप में पेश करने की कोशिश की जा रही है, वह केवल एक बयान है, अर्थात् "*मुझे यकीन है कि आपका जवाब इन कमरों के निर्माण में आपके घोटाले का खुलासा करेगा लेकिन आप जवाब देने से बच रहे हैं लेकिन मैं जवाब प्राप्त करूंगा।*".

60. हम नहीं जानते कि एक ट्वीट में एक बयान कि अपीलकर्ता द्वारा पूछे गए सवालों के प्रत्यर्थी सं. 1 के जवाब उसके घोटाले का खुलासा करेंगे, को मानहानिकारक कैसे कहा जा सकता है। हमें डर है कि भले ही किसी राजनीतिक दल से संबंधित व्यक्ति ने सार्वजनिक पद धारण करने वाले व्यक्ति को यह कहकर चुनौती दी हो कि "*मैं आपके घोटाले का पर्दाफाश करूंगा,* यह मानहानि के दायरे में नहीं आ सकता है। मानहानिकारक बयान विशिष्ट होना चाहिए और बहुत अस्पष्ट और सामान्य नहीं होना चाहिए। धारा 499 का आवश्यक घटक यह है कि अभियुक्त द्वारा लगाए गए लांछन में उस व्यक्ति की प्रतिष्ठा को नुकसान पहुंचाने की क्षमता होनी चाहिए, जिसके खिलाफ लांछन लगाए गए हैं। इसलिए, हमारा विचार है कि श्री विजेंद्र गुप्ता (क-5) द्वारा इस आशय के बयान को कि *आपका जवाब आपके घोटाले का खुलासा करेगा* नुकसान पहुंचाने वाला या यह जानने या यह मानने का कारण होने का लांछन

नहीं माना जा सकता है कि यह प्रत्यर्थी सं. 1 की प्रतिष्ठा को नुकसान पहुंचाएगा।

61. दुर्भाग्यवश अतिरिक्त मुख्य महानगर दंडाधिकारी द्वारा पारित दिनांक 28.11.2019 के समन आदेश में श्री विजेंद्र गुप्ता द्वारा किए गए ट्वीट की सामग्री पर ध्यान नहीं दिया गया। उस हद तक, अतिरिक्त मुख्य महानगर दंडाधिकारी की ओर से कोई विचार नहीं किया गया था।

62. हालांकि उच्च न्यायालय ने प्रथम दृष्टया ट्वीट्स की जांच की, इसने केवल धारा 499 को उद्धरित कर दंडाधिकारी द्वारा पारित समन आदेश को बरकरार रखा। राजनीति में लिप्त किसी व्यक्ति द्वारा किए गए इस दावे को कि उसके द्वारा पूछे गए प्रश्नों के सार्वजनिक पद पर उसके प्रतिद्वंद्वी द्वारा दिए गए उत्तर उसके घोटाले को उजागर करेंगे, अपने आप में पद धारण करने वाले व्यक्ति की प्रतिष्ठा को नुकसान पहुंचाने के इरादे वाला नहीं कहा जा सकता है। बयान जैसे कि *"मैं आपको बेनकाब कर दूंगा", "मैं आपके भ्रष्ट आचरण का पर्दाफाश करूंगा"* और *"मैं उस घोटाले का पर्दाफाश करूंगा जिसमें आप शामिल हैं, आदि"* जब तक कुछ और न हो, तब तक वे अपने आप में मानहानिकारक नहीं हैं।

63. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, श्री विजेंद्र गुप्ता (क-5) द्वारा दायर अपील केवल इस आधार पर सफल होने योग्य है कि उनके ट्वीट में निहित बयानों को

भा.दं.सं. की धारा 499 के अर्थ के भीतर मानहानिकारक नहीं कहा जा सकता है।

64. उपर्युक्त निष्कर्षों के आलोक में, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 65ख के आधार पर, हमें नहीं लगता कि हमें श्री विजेंद्र गुप्ता (क-5) द्वारा दिए गए अन्य तर्कों पर विचार करने की आवश्यकता है।

<u>निष्कर्ष</u>

65. परिणाम में, 2021 की वि.अनु.या. (आपराधिक) सं. 658 से उत्पन्न अपील को स्वीकार किया जाता है और अतिरिक्त मुख्य महानगर दंडाधिकारी, राउज एवेन्यू कोर्ट कॉम्प्लेक्स, नई दिल्ली द्वारा 28.11.2019 को जारी समन के आदेश को जहां तक श्री विजेंद्र गुप्ता (क-5) का संबंध है रद्द किया जाता है। हालांकि, अन्य आरोपियों के संबंध में शिकायत आगे बढ़े। श्री मनोज कुमार तिवारी द्वारा दायर 2021 के वि.अनु.या. (आपराधिक) सं. 351 से उत्पन्न अपील खारिज की जाती है।

लंबित आवेदन, यदि कोई हों, का तदनुसार निपटान किया जाता है।

.....न्या.
(एस. अब्दुल नज़ीर)

.....न्या.

(वी. रामसुब्रमण्यम)

नई दिल्ली

17 अक्टूबर, 2022

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा| समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*